भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-3, अंक-12	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी	वार्षिक चन्दा-20.00
सोमवार, 24 दिसं.' 79	मानद सहसम्पादक: डॉ. महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे	प्रति अंक : 2.00

कृपावतार स्वामिश्री सहजानंदजी

''साधु चलता भला''

हमारी भाषा में मुहावरा हैः ''साधु चलता भला।'' सुबह में एक स्थान पर हो तो दूसरे दिन या सायंकाल गोदोहन काल तक उसी स्थान पर स्थिर नहीं रहना चाहिए। नीलकंठ वर्णी के रूप में युवावस्था में जब भगवान स्वामिनारायण भूभ्रमण करते थे तब उन्होंने यही उपक्रम अपनाया था। सं. 1856 में सौराष्ट्र के लोग गाँव में रामानंद स्वामी के आश्रम में कुछ काल तक स्थिर रहे और उसके बाद स्थिर रहे केवल 'गढ़डा में! शहर, नगर आदि आबादी के स्थानों में कहीं स्थिर रहना उनके लिए केवल परेशानी थी।

शाकुन्तल के 5वें अङ्क में शाङ्गरव कहता हैः

''जनाकीर्ण मन्ये हुतवह परीतं गृहमिव।''

भीड़वाला स्थान एकान्तसेवी साधु को अग्नि की ज्वालाओं से लिपटा हुआ गृह समान लगता है।

भक्तवत्सल भगवान

किन्तु महाराज केवल साधु नहीं थे, साक्षात् परमात्मा थे; अतः भक्तों के आधीन थे, भक्तवत्सल थे, भक्तवश थे। जो पुरुषोत्तमनारायण अनेक जीवों के कल्याण के लिये सतत विचरण करते थे वह कहीं भी स्थिर हो जाय–कुछ समय के लिए–तो निश्चित् मानना चाहिए कि वहाँ भक्तों के हृदय में सच्ची भक्ति की अखण्ड धारा बह रही है। हमने आगे देखा कि गढडा महाराज का हृदय है। स्वयं महाराज ने कहा हैः ''मैं गढडा का और गढडा मेरा।'' यह बात सिद्ध करती है कि गढडा के दादाखाचर और उनकी दोनों बहनें लाडुबा और जीवुबा की भक्ति असाधारण थी। इन तीनों के बारे में लिखा गया है, किन्तु स्वामिनारायणी भक्तों में इनका जो वरिष्ठ स्थान है, जो महत्त्व है, उनकी जो वरिष्ठ भक्ति थी उसको पहचानना नितान्त आवश्यक है; क्योंकि उनकी कथा सब सत्संगी भाईबहनों के लिए प्रेरणादायक है।

अव्यभिचारिणी भक्ति

जैसा कि आगे लिखा मांचाखाचर के यहां पिता एभलखाचर के साथ उत्तमकुमार (दादाखाचर), जया (जीवुबा) और ललिता (लाडुबा) को महाराज का दर्शन हुआ तब से इन तीनों की महाराज के प्रति अव्यभिचारिणी भक्ति हो गई थी। जैसा गोपियों का भाव श्रीकृष्ण चरण में था, जैसा मीरा का भाव अपने ''नटवर नागर'' या ''गिरिधर गोपाल'' में था ऐसा ही भाव उनका स्वामिनारायण में था। स्वामिनारायण के प्रति उनकी इतनी अत्यधिक भक्ति थी कि संसार के अन्य सुखों व भोग मृगमरीचिका के समान हो गये थे। पिता एभलखाचर की स्वामिनारायण के प्रति भक्ति थी, किन्तु वह सूर्यवंशी काठी राजा को अभी अपना कुलाभिमान और कुलमर्यादा का ख्याल था। परिणामस्वरूप पिता ने जीवुबा की शादी करने का निर्णय लिया। काठी राजा की कुमारी शादी किए बिना कैसे रह सकती है? जब जीवुबा को यह समाचार मिला तब उन्होंने पिताजी के पास जा कर कहाः बापू ! मैंने हरिवर के साथ शादी कर ली है।''

हरिवर के साथ शादी

है न संत शिरोमणि भक्त कवयित्री मीरा के शब्द ! किन्तु मीरा को भी शादी जबरदस्ती करनी पड़ी थी। ठीक उसी प्रकार लोकलाज के कारण एभलखाचर ने लड़की की एक भी नहीं मानी और कुंडल गांव के प्रख्यात अमरा पटगर के लड़के हाथिया पटगर के साथ जीवुबा की शादी कर ही दी। लड़की को लेकर बारात की विदाई हुई और जीवुबा ससुराल में आई।

किन्तु महाराज के दर्शन बाद जीवुबा का मन संसार में नहीं लगता था। स्वामिनारायण के परमानंद की प्राप्ति के बाद संसार के सुख की कामना नष्ट हो गई थी। जिस हृदय में पूर्णपुरुषोत्तम बिराजमान थे वहां अन्य कैसे बैठ सकता था? जीवुबा का संसारविरक्त मन सांसारिक बन्धनों से सतत् मुक्ति चाहता था। किसको कहे? अन्ततोगत्वा उन्होंने अपनी सास राईबाई को कहाः ''मुझे ब्रह्मचर्य का पालन करना है और भगवान की भक्ति करनी है।'' यह सुनकर परमात्मा की परम कृपा से राईबाई के मन में निश्चय हो गया कि यह जगत का जीव नहीं है। उसने सोचा कि हम स्वयं पुण्य न कर सकें तो भी किसी के पुण्यमार्ग में अवरोधक तो नहीं होना चाहिए। ऐसा सोचकर उन्होंने अपने लड़के हाथिया पटगर को बुलाया और कहाः

''बेटा ! इनको विवाह-बन्धन से मुक्त कर दो।'' महाराज की लीला अद्भुत है। पति ने भी अपनी युवती पत्नी राजकुमारी जयादेवी अर्थात् जीवुबा को लग्न बन्धन से मुक्ति दे दी और इस प्रकार की चिट्ठी भी लिख दी। जीवुबा शीघ्र गढडा चली गई। मीरा भी तो गाया करती थी– 'लोकलाज कुल की मर्यादा यहाँ मैं एक न रखूँगी'। पिता के प्रांगण में जब जीवुबा ने पाँव रखा तब एभलखाचर ने भांप लिया कि लड़की ने मनमानी की है। काठी के बच्चे को अन्तर में आग लगी और लड़की को न कहने योग्य वचन कहे, किन्तु जब इन्होंने हाथिया पटगर की चिट्ठी पढ़ी और जब इनको ज्ञात हुआ कि पटगर ने जीवुबा की भक्ति की लगन देखकर स्वयं संसार के बन्धनों से क्लेश बिना उसे मुक्त की हैं तब पिता द्रवित हो गये और जीवुबा परमात्मा की अखंड सेवा में लग गई।

इसके कहते हैं ''भक्ति व्यभिचारिणी'' अर्थात् ऐसी एकनिष्ठ भक्ति-जिसमें दूसरे को स्थान ही नहीं है। ''दूसरो न कोई'' यह मीरा का वचन यहां भी सार्थक है।

लाडुबा की विरक्ति

ललिता (लाडुबा) भी पीछे नहीं रही थी। एभलखाचर ने सोचा था कि जीवुबा तो भक्तन हो गई मगर लाडु तो संसार ग्रहण करेगी। उनका विवाह उन्होंने बोटाद के खोडा धाँधल के साथ किया। किन्तु वह भी ससुराल से वापस आई क्योंकि भगवान स्वामिनारायण की ओर उनकी प्रेम-श्रद्धा जीवुबा से तनिक भी कम न थी।

आगे हम लिख चुके हैं—दोनों के केवल देह दो थे, प्राण एक ही थे और उस प्राण की साध थी अपने परमात्मा के प्रति अव्यभिचारिणी, एकाश्रयी, एकांतिकी भक्ति ! महाराज की इच्छा थी इन बहनों के माध्यम से समग्र नारीसमाज में धर्म जागृति की चेतना का प्रसार !

धर्ममर्यादा और नारीउत्कर्ष

यहाँ एक तथ्य सामने उभर कर आता है जिसको न केवल बाह्य समाज किन्तु स्वामिनारायण सम्प्रदाय के भी बहुत लोग नहीं समझते हैं कि स्वामिनारायण भगवान स्त्री के और स्त्री समाज के कल्याण के विरोधी कभी नहीं थे। नर और नारी के बीच स्वयं प्रकृति ने आकर्षण रख दिया है। सृष्टि की उत्पत्ति के समय प्रथम विचार पुरुष को यह आया था कि ''एकोऽहं बहु स्याम्!''—''मैं एक हूँ अनेक रूप में प्रगट हो जाऊँ''। इस विचार में निहित है आदिम आकर्षण। किन्तु यह आकर्षण प्राकृतिक है, दिव्य नहीं है। और यह आकर्षण दिव्य चेतना में जाने वाले के लिए नहीं है। दिव्यता से हट कर प्राकृतिकता में जाना हो तो यह आकर्षण ठीक है किन्तु प्राकृतिकता से दिव्यता में जाना ही मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य हैं। इसलिए इस प्राकृतिक आकर्षण से परे होना ही पड़ेगा। स्वामिनारायण भगवान मनुष्य की तीनों मूलभूत वृत्तियां-अहं self instinct, वासना sex instinct और मनुष्य की परस्पर मिलने-जुलने की वृत्ति gragarious instinct भलीभाँति जानते थे और इन तीनों से परे हुए बिना प्रकृति दिव्य नहीं हो सकती है यह भी जानते थे। अतः उन्होंने स्त्री-पुरुष घी और अग्नि को अलग रखने की एक धर्म मर्यादा निश्चित कर दी थी। किन्तु यह नारी द्रोह नहीं था। नारी की दृष्टि से यह नरद्रोह भी कहा जा सकता है, किन्तु वह भी नहीं था। वास्तव में यह वासनाद्रोह था। यदि यह नारी-द्रोह होता तो जीवुबा-लाडुवा और बाद में अनेक नारी-भक्त स्वामिनारायण सम्प्रदाय में क्यों होते? वास्तव में यह मर्यादा नर-नारी दोनों के कल्याण के लिए है। श्री किशोरीलाल मशरूवाला जो स्वामिनारायण सम्प्रदाय के मूलभूत तत्त्वों से अच्छी तरह से अगवत थे उन्होंने लिखा है:''इस प्रकार स्त्रियों के लिये पुरुषों के समान दर्शनादिक की अलग व्यवस्था करने में और स्त्रियो के लिए ज्ञानप्राप्ति की अलग व्यवस्था करने में स्वामिनारायण प्रथम हैं।'' वास्तव में भगवान का उद्देश्य स्त्री को पुरुष की सहकामचारिणी मिटाकर उसकी सही सहधर्मचारिणी बनाने का था। इसके लिए धर्ममर्यादा का अर्थ पूरी तरह से समझना है और इसमें जड़ता से काम नहीं लेना है।

स्त्री उत्कर्ष और जड़वादी की मान्यता

जब स्वामिनारायण सम्प्रदाय में कोई स्त्रियों के उत्थान के लिए प्रवृत्ति करता है तब जड़वादी स्वाभाविक उसकी निन्दा करता है; किन्तु इसका मतलब तो यह है कि निन्दक स्वामिनारायण को, उनके द्वारा प्रस्थापित धर्ममर्यादा के सही अर्थ को और महाराज की नारी-उत्कर्ष की भावनाओं को समझते नहीं है। जन्म और कर्म जिनका दिव्य हो ऐसे भगवान को नारी के उत्कर्ष का स्पष्ट ख्याल है तभी तो उन्होंने दो सौ साल पूर्व नारी के धर्म सदनों का निर्माण किया है। इस तथ्य को अधिक समझने के लिए जीवुबा-लाडुबा के जीवन का वृत्तान्त जानना चाहिए।

परमात्मा था नाजुक नारी !

भगवान स्वामिनारायण जब प्रथम गढडा पधारें तब जीवाखाचर के घर ठहरे थे। जीवुबा-लाडुबा शीघ्र दर्शन करने के लिए गये और किसी भी प्रकार अपने घर भगवान आयें ऐसी इच्छा की; किन्तु काठियों की कुलमर्यादा के डर से पिता एभलखाचर ने मना कर दिया। जीवुबा और लाडुबा ने सोचा कि कुछ रास्ता निकालना चाहिए। अतः एक बार जब ''महाराज उन्मत्त गंगा में स्नान के लिए गये तब दोनों बहन पानी भरने का बहाना करके गगरी लेकर पहुँच गई नदी तीर ! गगरी में क्या था? स्त्रियों के कपड़े ! भक्तवत्सल भगवान ने क्या किया होगा? पहन लिये नारी के कपड़े ! अक्षरधाम निवासी, अनन्त कोटि ब्रह्मांड के धारक छोटी सी नारी बन गये और प्रभु स्त्री का वेश लेकर जीवुबा और लाडुबा के पीछे पीछे पहुँच गये एभलखाचर के दरबार में। खाचर ने पूछाः ''यह कौन है''? शीघ्र उत्तर मिलाः ''यह तो कालु तरवाड़ी की लड़की की लड़की प्रभुभजन के लिये आई है।'' वास्तव में जैसे मीरा ने लिखा है, जैसे भागवतकार ने लिखा है–यह कुलमर्यादा का लोप था, किन्तु दिव्य जन्म कर्म वाले भगवान और भक्त के अप्राकृतिक असंसारी–पूर्णप्रेम का चरम उत्कर्ष था। कृष्ण गोपी के प्रेम को, महाराज और जीवुबा-लाडुबा के प्रेम को सांसारिक कैसे जान सकते हैं? ऊधव जैसे भी न जान पाये थे तो एभलखाचर कैसे जान पा सकते थे? प्रेम के नितान्त शुद्ध वह्नि की लपट में सब मर्यादा जल जाती है। किन्तु एभलखाचर की यह दृष्टि नहीं थी। अतः उनको जब किसी ने कहा कि आपके घर में कोई साधु है और आपकी दोनों लड़कियाँ उनकी सेवा करती हैं तब उनका काठी का खून उबल आया और नंगी तलवार लेकर पहुँच गये जीवुबा-लाडुबा के कमरे पर और बोल उठेः

''कुल कलंकिनी ! कहाँ छिपाया है उस दंभी साधु को?'' जल्दी कह दे। आज मेरी तलवार उसके खून की प्यासी हो गई हैं। जीवुबा उस समय ध्यान मग्न स्थिति में भगवान की मूर्ति के पास दूध का कटोरा रख रही थी। पिता के क्रोध से निर्लिप्त होकर यह भगवान के समक्ष नैवेद्य रखती हुई खड़ी रह गई। सात्त्विक प्रेमभावना ने उल्टा प्रभाव किया और खाचर बोल पड़े, ''यदि तेरा भगवान सच है तो यह दूध पी जाएगा। यदि वह नहीं पीएगा तो आज मैं तेरे कोटि कोटि टुकड़े कर दूँगा।'' भगवान ने भी सोचा कि आज मैं एभलखाचर के कुलाभिमान का टुकड़ा कर दूँ, क्योंकि भक्ति तब ही होती है जब हर प्रकार से अभिमान नष्ट होता है। मूर्ति में से चतुर्भुज

भगवान प्रगट हुए और जन्म-जन्म की दासी जीवुबा का दूध का कटोरा पीने लगे ! सारा कमरा अद्‌भुत प्रकाश से द्युतिमान हो गया !! यह दृश्य देखकर एभलखाचर भयभीत हो गए। हाथ में जो तलवार थी वह अपने आप गिर पड़ी। एभलखाचर और परमात्मा का संबंध जीवुबा के माध्यम से हो गया और एक क्षण पूर्व जो कुलकलंकिनी थी यह कुलदीपिका हो गई !!

''आप तो कुलदीपिका हो बेटी। आप किसकी भक्ति करती हो बेटी?''—एभलखाचर ने प्रभुमस्ती में झूमते हुए कहा। उत्तर मिला।

''उनकी, हाँ उनकी जिनको आप सामान्य साधु समझ कर मारने आए थे, उनकी। प्रगट प्रभु पुरुषोत्तमनारायण की—भगवान स्वामिनारायण की—जिनके दर्शन आपने भी अभी किये। भगवान आपके भी हैं पिताजी! जो भगवान की भक्ति करता है उनकी भक्ति स्वयं भगवान करता है। महिमा सहित भजन कीजिए, भगवान आपके वश भी हो जाएंगे।''

निश्चय के महल में

ऐसी मधुर वाणी में जीवुबा ने भगवान की महिमा का गान किया कि जो एभलखाचर आज तक भगवान को पहचानते हुए भी नहीं पहचानते थे उनके अन्तर में दृढ़ निश्चय हो गया—भगवान की ओर दृढ़ प्रीति हो गई और उनके अन्तर में भगवान ज्योति जागृति हो गई।

भक्त कवि दयाराम ने लिखा हैः

''निश्चयना महेलमां वसे मारो वालमो॥''

—एक बार अन्तर में दृढ़ निश्चय हो जाय तो उस निश्चय रूपी महल में परमात्मा निरन्तर निवास करता है।

इस सारे प्रसंग पर सद्‌गुरु ब्रह्मानंद स्वामी ने कीर्तन लिखा हैः 'नाथ बन्या नाजुकड़ी.....।' जीवुबा की भक्ति और सेवा अंगीकार करने के लिए अनंत ब्रह्मांड के अधिपति भगवान स्वामिनारायण ने नाजुक नारी का रूप लिया ! नरसिंह के जीवन में भी ऐसा उदाहरण है और मीरा के जीवन में भी.....और अनेकानेक सद्‌भक्तों के जीवन में भी.....

अब कहिए स्वामिनारायण नारी-उत्कर्ष के विरोधी है? एक विचित्र विरोधाभास दृष्टि गोचर होता है किन्तु यह विरोध का आभास ही है, विरोध नहीं है ! प्रकृति कभी भी निरंकुश न हो जाय इसके लिए यह एक धर्ममर्यादा है। जीवुबा-लाडुबा स्वयं किसी पुरुष का स्पर्श नहीं करती थी और जीवुबा लाडुबा के माध्यम से ही भगवान स्वामिनारायण ने बहनों के लिये भक्ति के द्वार खोल दिये। महाराज का उद्‌देश्य केवल प्रकृतिजन्य पुरुषाभिमान और स्त्री अभिमान को नष्ट करने का था क्योंकि वह अभिमान प्राकृतिक विलास की और ले जाकर दोनों को नष्ट करता है। ''पुरुष पुरुषातन माहरु खोयु में'' नरसिंह कहता है—''मैंने अपना पुरुषत्व का अभिमान खो दिया है।'' क्योंकि इसको खोये बिना हरिगुण गाना असंभव है। मीरा का उदाहरण सुप्रसिद्ध है। जब वह ब्रज में गई और उसको कहा गया कि जीव गोसाई स्त्रीमुख नहीं देखता है तब मीरा ने गाया।

''आज लगी हुं एम जाणती
व्रजमां कृष्ण पुरुष छे एक।
वृंदावन वसी हजी पुरुष रह्या छो
तेमां धन्य तमारो विवेक।।''

''आज तक मैं ऐसा जानती थी कि ब्रज में केवल कृष्ण ही पुरुष है। वृंदावन में रह कर अभी भी आप पुरुष हो यह तो निश्चित अविवेक है॥''

यहाँ पर पौरुषाभिमान त्यागने की ही बात है। किन्तु जब तक ऐसा अभिमान नष्ट नहीं हुआ है। जब तक इन्द्रियाँ संसार की ओर झुकती हैं और जब तक इन्द्रियों का स्वामी मन परमात्मा में विगलित नहीं हुआ है तब तक धर्म मर्यादा की असिधारा पर चलना ही पड़ेगा। इसमें ही श्रेय है दोनों का। किन्तु इस धर्ममर्यादा का अर्थ स्त्री को धर्म से वंचित रखने का कभी नहीं है। महाराज ने अपने वचन से और कार्य से ऐसा कभी नहीं दर्शाया यह तथ्य उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। स्त्रियों के लिए धर्म की व्यवस्था कर देना यह तो भगवत्कार्य है। जड़वादी इस सूक्ष्म रेखा को नहीं समझेगा। यह भय गुरुहरि प.पू. योगीजी महाराज को भी था। किन्तु यह भीति गलत है वह भी वे समझते थे, अतः नारी उत्कर्ष की हर प्रकार की व्यवस्था को उनका आशीर्वाद था। महाराज का ऐसा ही आशीर्वाद जीवुबा और लाडुबा को था और उस पीढ़ी, इस पीढ़ी और आने वाली हजारों पीढ़ियों की स्त्रियों को यह आशीर्वाद है; अन्तर केवल दृष्टिकोण का है।

दिव्य चेतना की विरासत

महाराज को तो पूर्ण पुरुषोत्तम माना जाता है किन्तु यह पुरुषोत्तमत्व महाराज तक ही सीमित था। यह एक दृष्टि है। यह दृष्टि महाराज के पूर्ण पुरुषोत्तमत्व को भी सीमित करती है। महाराज के साथ पूर्णपुरुषोत्तमत्व नष्ट हो जाय तो स्वामिनारायण की मूर्ति केवल प्रदर्शन का पुरातन सुन्दर अवशेष ही रह जायेगी ऐसा ख्याल उन भ्रान्त दृष्टिवालों को नहीं है। महाराज आज भी जीवित है। उनकी चेतना आज भी कार्य कर रही है यह ही सच्चाई है। तब तो स्वामिनारायण सम्प्रदाय जीवित है। दिव्यता की विरासत चल रही है। रामकृष्ण परमहंस ने पार्थिव शरीर छोड़ने के पूर्व कहा थाः ''अब मेरे पास कुछ नहीं रहा। जो कुछ था मैंने स्वामी विवेकानन्द को दे दिया। पुरुषोत्तम ने भी अपनी विरासत अक्षर को–गुणातीतानन्दस्वामी को दे दी थी। स्वामी ने भी 'धाम' में जाने से पहले कहा थाः ''अब तो महुवा जाकर रहेंगे।'' किन्तु पार्थिव लोग उस सूचना को नहीं समझे थे। स्वामिजी का इशारा प्रागजी भक्त की ओर था। मगर कौन समझता था? शास्त्रीजी महाराज ने अपनी पूरी विद्वत्ता और कवित्व के अर्क के रूप में लिखा हैः

''श्रीमन्निर्गुणमूर्तये च विभवे ज्ञानोपदेष्ट्रे सदा
सर्वज्ञाय समग्रसाधुगुणिने मायापराय स्वयम्।
सर्वैश्वर्यवते निजाश्रितजनानां दोषहर्त्रे च मे
प्राग्जित्सद्गुरवेनमोऽस्तु सततं ब्रह्मात्ममुक्ताय ते।।''

निर्गुणावस्था की मूर्ति, अनन्त ऐश्वर्ययुक्त, ज्ञान का उपदेष्टा, सर्वज्ञ, साधु के सब गुणों के धारक, माया से पर, ईश्वरीय गुणों से युक्त और अपने आश्रितों का दोष हरने वाले सद्गुरु प्रागजी भक्त–उस ब्रह्म को नमस्कार।

समझने वाले के लिए क्या यह स्वामिनारायण का ही दिव्य कीर्तन नहीं है? शास्त्रीजी महाराज का विभूतिमत्व का इशारा गुरुहरि योगीजी महाराज ने नहीं दिया है? आज प.पू. काकाजी, योगीजी महाराज की भक्ति नहीं करते है? और योगीजी महाराज की विरासत के रूप में प.पू. काका, प.पू. पप्पा और प.पू.

"Life Made Easy"

Human beings live the life but they do not know the real meaning and purpose of life as it is. As such, life is a mystery with a series of continuous struggle. Life is also a dream and it is also the most precious boon. Man can make it beautiful, graceful and blissful working in the multi-dimentional spheres, but so far right from the animal's evoluation upto man, the human being has not refined his own nature. The ingradients of the animal nature and the crude nature have been carried out as they are without any change for refinement. Religions have also not been able to change a state of the mind in the right direction.

Man thus has run a mad race in the wrong direction with all those crude ingradients without properly understanding the nature and power of sex, fear, security and ego-sense. Life has therefore become miserable, full of tension, conflict, violence, chaos and confusion. With the scientific developments and even with the magic inventions, the human being has still not been able to change permanently the inner consciousness under illuminated state of the mind. The vigorous exercises, the spiritual disciplines and the penances have also not contributed effectively for the total change and refinement of this baser instincts and the crude nature. They just live on in ignorance, darkness and in a hypocritical illusions. The reality of life seems to be far of and we have therefore missed the essence of life. There is thus the hollowness and missing link within and in our society. "The realisation of self is the highest knowledge"-as the Upanishad say; as to know once real-self internally and externally of which Gita has given us clear cut guidance. We are all Arjunas and as long as we do not find the real guide or the true path-finder like Lord Krishana or Lord Rama or Lord Swaminarayan or the realised saint; then the same conflict. chaos and tension will always remain. Some experiments have been caried out sparingly here and there by the spiritual Masters but their immediate disciples and followers have not carried the same truth or the original

---

स्वामिजी हमारे बीच में नहीं हैं? तो प.पू. काकाजी का प.पू. पप्पा जी का और प.पू. स्वामिजी का नारी उत्कर्ष का कार्य स्वामिश्रीजी की देन है ऐसा हम क्यों न समझे ! नहीं समझेंगे तो जीवुबा और लाडुबा काजीवन निरर्थक हो जाएगा। इन दोनों की भक्ति निरर्थक हो जायेगी और इनके द्वारा महाराज की प्रेरणा से प्रवाहित स्त्रियों के धर्म स्वातन्त्रय की गंगा निरर्थक हो जायेगी। मगर सद्भाग्यवश ऐसा नहीं है। **जीवुबा और लाडुबा तो महाराज की धर्मगंगा की गंगोत्री है और आज यह गंगा एक महानद का दर्शनीय रूप लेकर आगे बढ़ती जा रही है।** यह ही है जीवुबा-लाडुबा के जीवन की सच्ची अर्थवत्ता जो हमें प्रेरित करती है और स्वामिनारायण धर्म सार्वभौम और सर्वस्पर्शी है यह सिद्ध करती है।

—क्रमशः

message of love and compassion. A new awakening with some determined efforts base on indomitable faith and vision will have to be developed and properly understood, accepting the totality of real life and of this universe. We will be then able to know the working of the controller of our life-the creater and protector of our life.

Let us therefore decide and take the vow to do something concrete in this right direction.

1. We have also to develop the sensitivity and awareness of this inner working for realising truth, happiness and bliss in our life.

2. Sharring together among fellow being will be inevitable condition for such spiritual development in the right direction.

3. Life is made easy and creative by the above understanding and guidance from the masters in the right direction.

4. A new light and vision will then dawn on the human being for the entire good of the people in general.

According to position of the planets the life of the child is controlled. Horoscopes and astrology do have bearing upon the child's future. But there is power greater than astrology and horoscope which can guide us, inspite of all the starts and planets. That power is God. If we are deveoted to God, we do not mind what the planets predict for us. We have then nothing to do with planets, as we are entirely in hands of God. God is looking after us. Future is safe in hands of God.

-Swami Ramdas

In the end, let us pray those spiritual masters to enable us to work out the new Divine Society by the divine planners for the divine action. The Sant-marg of trust and surrender is the simple and easy and can be adopted by all lovers of people everywhere.

व्रतोत्सवसूची

1. दि.	16.12.79	रविवार	धनुर्मास प्रारंभ
2. दि.	27.12.79	गुरुवार	नवमी, श्री हरिजयंती
3. दि.	29.12.79	शनिवार	पुत्रदा, एकादशी
4. दि.	2.1.80	बुधवार	मू.अ.मू. गुणातीतीनंदस्वामि जी का दीक्षा दिन
5. दि.	14.1.80	सोमवार	मकरसंक्रान्ति, एकादशी, ब्र.स्व. स्वामिश्री योगीजी महाराज का स्वधामगमन
6. दि.	15.1.80	मंगलवार	धनुर्मास समाप्ति

साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदास जी द्वारा योगी डिवाईन सोसाईटी,
ए-103, अशोक विहार-III, दिल्ली-110052 फोनः 711838
मुद्रण स्थानः ठक्कर प्रिंटिंग प्रेस, 2588, बस्ती पंजाबियान, सब्जी मण्डी, दिल्ली-110007